११.सत्प्ररुपणाका विषय

प्रस्तुत ग्रंथमें ही जीवट्ठाणकी उत्थानिकामें कहा गया है कि धरसेन गुरुसे सिध्दान्त सीखकर पुष्पदन्ताचार्य वनवास देशको गये और वहां उन्होने 'विंशति' सूत्रोंकी रचना करकेऔर उन्हें जिनपालितको पढाकर भूतबलि आचार्य, जो द्रमिल देशको चले गये थे, उनके पास भेजा । भूतबलिने उन सूत्रोंको देखा और तत्पश्चात द्रव्यप्रमाणसे प्रारम्भ करके शेष समस्त षट्खंडागमकी सूत्र-रचना की । इससे स्पष्ट है कि सत्प्ररू पणाके कुल सूत्र पुष्पदन्ताचार्यके बनाये हूए हैं । किन्तु उन सूत्रोंकी संख्या विंशति अर्थात् वीस नहीं परन्तु एक सौ सतहत्तर है । तब प्रश्न उपस्थित होता है कि पूष्पदन्तके बनाये हुए वीस सूत्र कहनेसे धवलाकारका तात्पर्य क्या है ? धवलाकारने सत्प्ररू पणाके सूत्रोंका विवरण समाप्त होनेके अनन्तर जो ओघालाप प्रकरण लिखा है वह वीस प्ररू पणाओंको ध्यानमें रखकर ही लिखा गया है । और इस सिध्दान्तका जो सार नेमिचंद सि.च.ने गोम्मटसार जीवकाण्डमें संगृहित किया है वह भी उन वीस प्ररू पणाओंकेअनुसार ही है। वे वीस प्ररुपणाएं गोम्मटसारकेशब्दोंमें इस प्रकार हैं ।---

गुणजीवा१ पज्जती१ पाणा१ सण्णा य मग्गणाओ१४ य ।
उवओगो वि य कमसो वीसं तु परू वणा भणिया ।। २ ।।

अर्थात् गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएं और उपयोग ये वीस प्ररू पणाएं हैं।

अतएव विंशति सूत्रसे इन्ही वीस प्ररू पणाओंका तात्पर्य ज्ञात होता है। इन वीसों प्ररू पणाओंका विषय यहां चौदह गुणस्थानों और चौदह मार्गणाओंकेभीतर आ जाता है।

राग, द्वेष व मिथ्यात्व भावोंको मोह कहते हैं और मन,वचन व कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंके चंचल होनेको योग कहते हैं। इन्ही मोह और योगके निमित्तसे दर्शन, ज्ञान और चरित्ररुप आत्मगुणोंकी क्रमविकासरू प अवस्थाओंको गुणस्थान कहते हैं।

ऐसे गुणस्थान चौदह हैं- १ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र ४ अविरतसम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशान्तमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगकेवली और १४ अयोगकेवली ।

१. मिथ्यात्व अवस्थामें जीव अज्ञानके वशीभूत होता है औ इसका कारण दर्शन मोहनीय कर्मका उदय है। सासादन और मिश्र मिथ्यात्व और सम्यग्दृष्टि के बीचकी अवस्थाएं हैं। चौथे गुणस्थानमें सम्यकत्व हो जाता है किन्तु चारित्र नहीं सुधरता। देशविरतका चारित्र्य थोडा सुधरता है, प्रमत्तविरतका चारित्र पूर्ण तो होता है, किन्तु परिणामोंकी अपेक्षा अप्रमत्तविरतसे चारित्रकी क्रमसे शुध्दि व वृध्दि होती जाती है । ग्यारहवें गुणस्थानमें चारित्रमोहनीयका उपशम हो जाता है और बारहवां गुणस्थान चारित्र मोहनीयके क्षयसे उत्पन्न होता है। तेरहवें गुणस्थानमें सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता है किन्तु योंगोंका सद्‌भाव भी है । अन्तिम गुणस्थामें दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी पूर्णता तथा योंगोंका अभाव हो जानेसे मोक्ष हो जाता है।

मार्गणा शब्दका अर्थ खोज करना है। अतएव जिन जिन धर्मविशेषोंसे जीवोंकी खोज या अन्वेषण किया जाय उन धर्मविशेषोंको मार्गणा कहते हैं। ऐसी मार्गणाएं चौदह हैं-गति, इन्द्रिय काय, योग वेदकषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व,संज्ञित्व और आहार।

१. गति चार प्रकारकी हैं-नरक,तिर्यंच, मनुष्य और देव.
२. इन्द्रियां द्रव्य और भावरू प होती हैं और वे पांच प्रकारकी हैं-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र.

३ एकेन्द्रियसे पांच इन्द्रियों तककी शरीररचनाको काय कहते है । एकेन्द्रिय जीव स्थावर और शेष त्रस कहलाते हैं ।

४ आत्मप्रदेशोंकी चंचलताका नाम योग है इसीसे कर्मबंध होता है। योग तीन निमित्तोंसे होता है- मन, वचन और काय।

५ पुरू ष, स्त्री व नपुंसकरू प भाव व तद्रूप अवयवविशेषको वेद कहते हैं।

६ जो आत्माके निर्मलभाव व चारित्रको कषै अर्थात् घात पहुंचावे वह कषाय है। उसके क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार भेद हैं।

७ मति, श्रुति, अवधि, मन:पर्यय, केवल, तथा कुमति, कुश्रुति और कुअवधि रू पसे ज्ञान आठ प्रकारका होता है ।

८ मन व इन्द्रियोंकी वृत्तिके निरोधका नाम संयम है और यह संयम हिंसादिक पापोंकी निवृत्तिसे प्रकट होता है ि सामायिक छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात संयमासंयम और असंयम, ये संयमके सात भेद हैं ।

३. चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल ये दर्शनके चार भेद है ।

४.

१० कषायसे अनुरंजित योंगोंकी प्रवृत्ति व शरीरके वर्णोंका नाम लेश्या है । इसके छह भेद हैं- कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

११ जिस शक्तिके निमित्तसे आत्माके दर्शन, ज्ञान और चारित्र गुण प्रगट होते है उसे भव्यत्व कहते हैं । तदनुसार जीव भव्य व अभव्य होते हैं ।

१२ तत्त्वार्थके श्रध्दानका नाम सम्यक्त्व है, और दर्शनमोहके उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, सम्यग्ग्मिथ्यात्व, सासादन व मिथ्यात्वरू प भावोंके अनुसार सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद हो जाते है ।

१३.मनके द्वारा शिक्षादिके ग्रहण करनेको संज्ञा कहते हैं और ऐसी संज्ञा जिसमें हो वह संज्ञी कहलाता है। तदनुसार जीव संज्ञी व असंज्ञी होते हैं ।

१४ औदारिक आदि शरीर और पर्याप्तिके ग्रहण करनेको आहार कहते हैं । तदनुसार जीव आहारक और अनाहारक होते हैं ।

इन चौदह गुणस्थानों और मार्गणाओंका प्ररूपण करनेवाले सत्प्ररूपणाके अन्तर्गत १७७ सूत्र हैं जिनका विषयक्रम इस प्रकार है। प्रथम सूत्रमें पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया है। आगेके

तीन सूत्रोंमें मार्गणाओंका प्रयोजन बतलाया गया है और उनका गति आदि नामनिर्देश किया गया है। ५, ६ और ७ वे सूत्रमें मार्गणाओंके प्ररूपण निमित्त आठ अनुयोगद्वारोंके जाननेकी आवश्यकता बताई है और उनके सत् द्रव्यप्रमाण (संख्या) आदि नामनिर्देश किये हैं। ८ वें सूत्रसे इन अनुयोगद्वारोंमेंसे प्रथम सत् प्ररूपणाका विवरण प्रारम्भ होता है जिसके आदिमेंही ओघ और आदेश अर्थात् सामान्य और विशेष रूपसे विषयका प्रतिपादन करनेकी प्रतिज्ञा करके मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानोंका निरूपण किया है जो ९ वें सूत्रसे २३ वें सूत्रतक चला है। २४ वें सूत्रसे विशेष अर्थात् गति आदि मार्गणाओंका विवरण प्रारम्भ हुआ है जो अन्त तक अर्थात् १७७ वें सूत्रतक चलता रहा है । गति मार्गणा ३२ वें सूत्रतक है । यहांपर नरकादि चारों गतियोंके गुणस्थान बतलाकर यह प्रतिपादन किया है कि एकेन्द्रियसे असंज्ञी पंचेन्द्रियतक शुध्द तिर्यंच होते हैं, संज्ञी मिथ्यादृष्टीसे संयतासंयत गुणस्थानतक मिश्र तिर्यंच होते हैं, और इसी प्रकार मनुष्य भी । देव और नारकी असंयत गुणस्थानतक मिश्र अर्थात् परिणामोंकी अपेक्षा दूसरी तीन गतियोंके जीवोंके साथ समान होते हैं । प्रमत्तसंयतसे आगे शुध्द मनुष्य होते हैं। ३३ वें सूत्रसे ३८ वें तक इन्द्रिय मार्गणाका कथन है और उससे आगे ४६ वें सूत्र तक कायका और फिर १०० वें सूत्र तक योगका कथन है। इस मार्गणामें योगके साथ पर्याप्ति अपर्याप्तियोंका भी प्ररूपण किया गया है। तत्पश्चात् ११० वें सूत्रतक वेद, ११४ तक कषाय, १२२ तक ज्ञान, १३० तक संयम, १३५ तक दर्शन, १४० तक लेश्या, १४३ तक भव्य, १७१ तक सम्यक्त्व, १७४ तक संज्ञी और फिर १७७ तक आहार मार्गणाका विवरण है।

प्रतियोंमें सूत्रोंका क्रमांक दो कम पाया जाता है, क्योंकि, वहां प्रथम मंगलाचरण व तीसरे सूत्र 'तं जहा' की पृथक गणना नहीं की। किन्तु टीकाकारने स्पष्टत: उनका सूत्ररूपसे व्याख्यान किया है, अतएव हमने उन्हें सूत्र गिना है।

टीकाकारने प्रथम मंगलाचरण सूत्रके व्याख्यानमें इस ग्रंथका मंगल, निमित्त, हेतु परिणाम, नाम और कर्ताका विस्तारसे विवेचन करके दूसरे सूत्रके व्याख्यानमें द्वादशांगका पूरा परिचय कराया है और उसमें द्वादशांग श्रुतसे जीवट्ठाणके भिन्न भिन्न अधिकारोंकी उत्पत्ति बतलाई है। चौथे सूत्रके व्याख्यानमें गति आदि चौदह मार्गणाओंके नामोंकी निरूक्ति और

सार्थकता बतलाते हुए उनका सामान्य परिचय करा दिया गया है। उसके पश्चात् विषयका खूब विस्तार सहित न्यायशैलीसे विवेचन किया है। टीकाकारकी शैली सर्वत्र प्रश्न उठाकर उनका समाधान करनेकी रही है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथमें कोई छह सौ शंकाएं उठाई गई हैं और उनके समाधान किये गये हैं। उदाहरणों, दृष्टान्तों, युक्तियों और तर्कों द्वारा टीकाकारने विषयको खूब ही छाना है और स्पष्ट किया है, किन्तु ये सब युक्ति और तर्क, जैसा हम ऊपर कह आये है, आगमकी मर्यादाको लिए हुए हैं, और आगम ही यहां सर्वोपरि प्रमाण है। टीकाकारद्वारा व्याख्यात विषयकी गंभीरता, सूक्ष्मता और तुलनात्मक विवेचन हम अगले खंडमें करेंगे जिसमें सत्प्ररूपणाका आलाप प्रकरण भी पूरा हो जावेगा। तबतक पाठक स्वयं सूत्रकार और टीकाकारके शब्दोंका स्वाध्याय और मनन करनेकी कृपा करें।